लेख

भ्रांतियो के घेरे में
मुसलमान महिलाओं के हक़

फ्लेविया एग्नेस

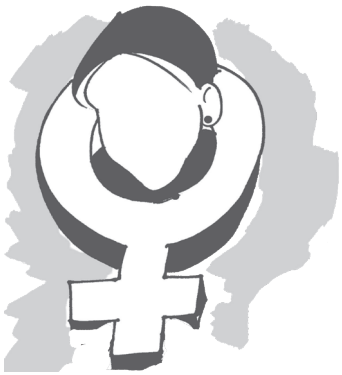

न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर, जो *भारतीय मुस्लिम कानून* के विशेषज्ञ माने जाते हैं ने अपने एक फ़ैसले के दौरान कहा था— "इस्लामी कानून की गुनाह से भी ज़्यादा मुखालफ़त होती है।" और जैसे-जैसे हम मुसलमान महिलाओं के अधिकारों का गहन अध्ययन करते हैं वैसे-वैसे इस कथन की सच्चाई हमारे समाने आती जाती है।

सत्रहवीं सदी में पैगम्बर साहब ने निकाह को एक अनुबंध का दर्जा देते हुए इसमें औरत की रज़ामंदी की बात की थी। इसके विपरीत हिंदू विवाह कानून के तहत स्त्री को एक सम्पत्ति का दर्जा दिया गया है जिसको दान स्वरूप (कन्यादान) दूल्हे को सौंप दिया जाता है। निकाह में औरत की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए मेहर की रकम को विवाह के समय औरत के नाम करने की भी बात की गई है। जबकि हिंदू विवाह में दहेज प्रथा का चलन है जो औरत के दोयम दर्जे का पुर्नस्थापित कर देती है। निकाह चूंकि एक अनुबंध है उसे तोड़ा जा सकता है और इसलिए एक मुसलमान लड़की के नैहर में अधिकार महफूज़ रहते हैं। एक हिन्दू लड़की विवाह के बाद अपने पति के परिवार का नाम अपनाती है और शादी होते ही मायके में उसके हक़ खत्म हो जाते हैं। मुसलमान महिलाएं अपने निकाहनामे में अपनी शर्तें दर्ज कराने का हक़ रखती हैं जिन्हें अदालत में वैधता प्रदान की जाती है। पैगम्बर साहब ने मुसलमान महिलाओं की सम्पत्ति में भी एक नियत हिस्सा पाने का अधिकार दिया था और यह हिदायत भी की थी कि वह अपना पूरा अधिकार किसी और के लिए या किसी के कहने पर नहीं छोड़ेगी क्योंकि यह कुरान द्वारा मिले विरासत के अधिकार का उल्लंघन होगा।

इनमें से अधिकतर हक़ एक ख्वाब की तरह ही लगते हैं क्योंकि कुरान में दर्ज व्यवस्था को उपनिवेशी और समकालीन दौर में अनेकों बार उलट-फेर किया गया है।

पर 1875 के *पूनो बीबी बनाम पुक्स पख्श* मामले का हवाला देते हुए मैं यह उजागर करना चाहूंगी कि किस तरह औरतें निकाहनामे में अपनी शर्तों को दर्ज करा सकती थीं और साथ ही उनको अदालत में किस प्रकार कानूनी मान्यता दी जाती थी।

"पति (पुक्स पख्श) ने अपनी पत्नी (पूनो बीबी) को दस रुपये माहवार गुज़ारा भत्ता देने के साथ निम्न शर्तों को पूरा करने की भी हामी भरीः

- *मैं तुम्हें खाने-पीने व कपड़ों के लिए कभी परेशान नहीं करूंगा।*
- *मैं अपनी पूरी कमाई तुम्हारे हवाले करूंगा।*
- *मैं तुम्हारे साथ किसी भी प्रकार हिंसा नहीं करूंगा।*
- *मैं तुम्हारे घर से तुम्हें कभी बेघर नहीं करूंगा।*
- *मैं तुम्हारी इजाज़त के बगैर कभी निकाह नहीं करूंगा।*
- *मैं तुम्हारी मर्ज़ी के बगैर कोई काम नहीं करूंगा।*

अगर मैं तुम्हारी रज़ामंदी के बगैर कुछ करूं तो तुम मुझे तलाक़ देने के लिए आज़ाद होगी। ऐसी स्थिति में मैं तुम्हें मेहर की रकम अदा करूंगा और इस निकाह को खारिज़ समझूंगा।"

उपरोक्त निकाहनामा ठीक वैसा ही है जैसा कोई भी लड़की शादी से पहले अपने नाम लिखवाना चाहेगी। कुछ दिनों के बाद पूनो बीबी का पति उसे छोड़कर चला गया। अदालत में पूनो बीबी ने अपने निकाहनामे को आधार बनाकर अपने पति की चालीस रुपये माहवार की तनख्वाह और 568 रुपये की बचत पर अपना दावा पेश किया। पति के वकील ने सुनवाई में कहा कि पूनो बीबी का दावा सार्वजनिक नीति के विरूद्ध था और इसे अदा करने पर पुक्स पख्श की हालत एक दास की तरह हो जायेगी। अदालत ने इस दलील को न मानते हुए पति को दस रुपये

माहवार गुज़ारा भत्ता अदा करने का फ़ैसला सुनाया।

इस केस के ज़रिये मैं यह समझाने की कोशिश कर रही हूं कि इस्लामी कानून किस प्रकार महिलाओं की सुरक्षा करता है जबकि हिंदू अथवा अंग्रेज़ी कानूनी व्यवस्था मे यह सुरक्षा निहित नहीं है। पर अफ़सोस यह है कि 1985 के शाहबानो केस व और *मुसलमान महिलाओं की सुरक्षा कानून 1986* के बनने के बाद मीडिया ने हमेशा यह दर्शाया है कि शरियत कानून में औरतों का कोई हक़ नहीं होते। इसके अलावा यह भी कहा जाता रहा है कि तलाक़ के तीन महीने के बाद मुसलमान महिला कोई भी गुज़ारा खर्च पाने का हक़ नहीं रखती और इस लिहाज़ से उसकी सुरक्षा हिन्दू महिला की तुलना में नगण्य है।

इसके साथ-साथ हम सामुदायिक नेताओं द्वारा मुसलमान महिलाओं के अधिकारों के हनन के किस्से रोज़ाना सुनते रहते हैं। उदाहरण के लिए इमराना के मामले को सनसनीखेज़ बनाते हुए मीडिया में यह दिखाया गया कि शरियत के अनुसार ससुर द्वारा बलात्कार किए जाने के बाद इमराना का अपने पति के साथ कोई भी संबंध नहीं हो सकता।

इस प्रकार की नकारात्मक घटनाओं को सुनकर हम इस बात को बिल्कुल भुला देते हैं कि कई मुसलमान महिलाओं ने अदालत में अपने हक़ के लिए संघर्ष किया है और महत्वपूर्ण अधिकार पाए हैं। ऐसा लगता है कि *शाहबानो केस* के बाद मुसलमान महिलाओं ने अदालत का दरवाज़ा छोड़कर काज़ी के पास जाकर 'खुला' की रज़ामंदी हासिल करनी शुरू की है जिसके लिए उन्हें अपनी मेहर की रकम और बच्चों की हिरासत का अधिकार गंवाना पड़ता है।

इस प्रकार की चयनात्मक रिर्पोटिंग जिसमें साम्प्रदायिकता का पुट हो मुसलमान महिलाओं के अधिकारों की तोड़ी-मरोड़ी तस्वीर प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए अधिकांश लोग इस बात से अनजान हैं कि *2001 दानियल लतीफी बनाम भारत सरकार* मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इद्दत की अवधि के दौरान गुज़ारा खर्चा व जीवन भर के लिए एक अच्छी-खासी रकम पाने के अधिकार को जायज़ मानते हुए महिला के पक्ष में फ़ैसला सुनाया। इस निर्णय के कारण उस महिला को अपने गुज़ारे के लिए एक बड़ी रकम मिली। हिन्दू महिलाओं के पास इस तरह का खर्चा पाने का कोई अधिकार नहीं होता। 1986 के फ़ैसले के बाद हर वर्ष बड़ी संख्या में मुसलमान औरतें इस अधिकार को पाने के लिए अदालत तक जाती हैं। अदालत ने इस फ़ैसले की संवैधानिक वैधता को कायम रखते हुए तलाक़शुदा मुसलमान महिला के आर्थिक अधिकारों के इर्द-गिर्द फैली अस्पष्टता को मिटाकर उन्हें एक ठोस आधार प्रदान कर दिया। परन्तु विडम्बना यह है कि मीडिया व धर्म-निरपेक्ष मानवाधिकारियों, महिला अधिकार कार्यकर्ताओं व वकीलों ने इस अहम फ़ैसले को नज़रअंदाज़ करते हुए तलाक़शुदा मुसलमान महिलाओं के पास अधिकार न होने की बहस जारी रखी।

2002 के एक अन्य मामले, *शमीम आरा केस* में सर्वोच्च न्यायालय ने तेहरा तलाक़ को अवैध करार देते हुए फ़ैसला सुनाया कि कुरान के अनुसार तलाक़ सार्वजनिक तौर पर दिया जाना चाहिए और ऐसा करने से पहले मध्यस्थता ज़रूरी है। इस नियम के पहले अक्सर ऐसा होता था कि गुज़ारा खर्च के लिए अर्ज़ी डालने पर पुरुष कोर्ट में तलाक़ के दस्तावेज़ दाखिल कर देते थे जिससे उनको खर्चा न देना पड़े। अब ऐसा करना संभव नहीं था क्योंकि उच्च व सर्वोच्च न्यायालयों ने इस प्रकार के दस्तावेज़ों को मान्यता देने से इंकार कर दिया और पतियों को गुज़ारा भत्ता देने के आदेश जारी कर दिए हैं। इस मुद्दे पर हमारे सामने अदालत द्वारा पारित किए गए कई फ़ैसले मौजूद हैं।

इन सब बातों के बावजूद आम धारणा यही है कि मुसलमान महिलाओं के पास अधिकारों का बहुत अभाव है। अफ़सोस तो इस बात का भी है कि न सिर्फ़ पति बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता, महिला अधिकार वकील, सत्र अदालत के न्यायाधीश आदि भी इसी पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं। इसी सबको ध्यान में रखते हुए मैं यह दोहराना चाहती हूं कि अनभिज्ञता के कारण काफी औरतें अपने ज़ायज़ अधिकारों को पाने से वंचित रह जाती हैं। इसलिए ज़रूरी है कि हम मुसलमान महिलाओं के अधिकारों को लेकर अपनी समझ को पुख्ता करें और पूर्वग्रहों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ें। जब तक हम ऐसा नहीं करते मुसलमान महिलाएं अपने हक़ों को खोकर मुफ़्लिसी और असमानता से जूझती रहेंगी।

फ्लेविया एग्निस *वकील व मजलिस संस्था की निदेशक हैं।*